स्नातकोत्तर हिन्दी द्वितीय सत्रार्द्ध

पत्र संख्या - 06

बिहारी के दोहों की व्याख्या।

दोहा संख्या :- 35, 38, 41, 46

दोहा :- 35 पाइ महावर दैंन कौं नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाइ॥

व्याख्या :- उपरोक्त दोहा जो 'बिहारी सतसई' से उद्धृत है, जिसका संपादन जगन्नाथ दास रत्नाकर के द्वारा किया गया है :- बिहारी ने इस दोहे में नायिका की सुकुमारिता का अतिशयोक्तिमूलक वर्णन किया गया है और इसके लिए लोकजीवन से महावर लगाने की रूढ़ि का सहारा लिया गया है। नायिका अक्सर पैर में महावर लगाती हैं और हर सप्ताह या दस दिन पर महावर लगाने का काम नाइन के द्वारा संपादित किया जाता है। इस दोहे में भी नाइन महावर की गोली लेकर नायिका के पाँव में महावर लगाने के लिए बैठी है। नायिका के पाँवों की एड़ी की लालिमा और गोलाई को देखकर वह भ्रम में पड़ जाती है ~~कि~~ और उसे यह लगता है कि यह एड़ी नहीं महावर है। बस एड़ी को ही महावरी समझकर वह इस आशा में मसलती है कि अभी महावर का रंग निकल आएगा। यहाँ पर भ्रांतिमान अलंकार विद्यमान है। बिहारी ने अपनी बातों को कहने के लिए बिम्ब का सहारा लिया है और ये बिम्ब दृश्य भी हैं और गतिशील भी, इसीलिए ये संश्लिष्ट बिम्ब योजना के उदाहरण हैं।

दोहा :- 38 नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं बिकास इहिं काल,
अली, कली ही सौं बिंध्यौ, आगैं कौन हवाल॥

व्याख्या :- इस दोहे में बिहारी ने अन्मोक्ति के सहारे नवोढ़ा नायिका, तो अवयस्क है, नायिका के प्रेम में आसक्त नायक को संयम बरतने का संदेश दिया है, साथ ही अपने दायित्वों के प्रति सजग होने का भी संकेत है। भ्रमर को संबोधित करते हुए इस दोहे में बिहारी कहते हैं कि हे भ्रमर! अभी इस कली में न तो सही ढंग से पराग ही आ पाए हैं और न मधुर मधु का सृजन हुआ है। ऐसी स्थिति में यदि तुम्हारी आसक्ति की यह दशा है, तो फिर उस समय तुम्हारी क्या हालत होगी जब उसमें पराग और मकरंद का आगमन होगा और वह कली विकसित होकर फूल बनेगी?

यहाँ पर बिहारी जिस भ्रमर को संबोधित कर रहे हैं, वह भ्रमर कोई और नहीं, स्वयं उनके संरक्षक शासक सवाई मिर्जा-राजा जयसिंह थे जो अपनी अवयस्क नवोढ़ा पत्नी के रूपजाल में फँसकर अपने राजकाज की उपेक्षा कर रहे थे। इस परिप्रेक्ष्य में इस दोहे का एक भिन्न अर्थ निकलता है और वह यह कि अभी नायिका की रंगत भी नहीं आ पाई है, न ही उसमें सरसता का संचार हो पाया है और न यौवन के आगमन के अभाव में विभिन्न अंग ही विकसित हो पाए हैं। कल जब नायिका में इन तमाम स्तरों पर परिवर्तन होगा तब तुम्हारी क्या दशा होगी?

कहा जाता है कि बिहारी के इस दोहे से मिर्जाराजा जयसिंह काफी प्रभावित हुए। उन्होंने बिहारी को सौ दीनार का पुरस्कार दिया और अपनी उदासीनता को छोड़कर एक बार फिर से राजकाज में रुचि लेना शुरू किया। बिहारी ने इस दोहे में दायित्वमूलक प्रेम का चित्रण को सम्भव बनाया है।

दोहा संख्या: 41

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाँहिं,
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै, आँखि न देखी जाँहि॥

व्याख्या :- प्रस्तुत दोहे में बिहारी अलंकार के जरिए यह समझाने की कोशिश करते हैं कि जिस ईश्वर की कृपा से

हमें जगत् का ज्ञान हुआ, हम उस ईश्वर को ही नहीं जानते, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार जिन आँखों से हम सारी दुनिया देखते हैं उन्हीं आँखों को हम नहीं देख पाते।

इस दोहे की आत्मस्वीकारोक्ति के रूप में भी की जा सकती है और अन्योक्ति के रूप में भी। अंजना यह कि हमें अपने हृदय में झाँककर उस परमात्मा को जानने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन, यह संभव है गुरु के सानिध्य में, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उनकी आँखों को देखने के लिए हमें दर्पण की जरूरत होती है।

दोहा :- 46 रससिंगार - मंजनु किए, कंजनु भजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु, नैन ॥

व्याख्या :- इस दोहे में शृंगार रस से आप्लावित नायिका की आँखों को कमल के सौन्दर्य गर्व को भंग करनेवाला बतलाया है। आशय यह है कि शृंगार रस से आपूरित नायिका की आँखें कमल से भी अधिक सुन्दर हैं। दरबारी संस्कृति के बाह्याडंबर प्रदर्शनप्रियता और अलंकरण की तमाम दबावों के बावजूद यहाँ पर बिहारी की नायिका सौन्दर्य के बाहरी प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं महसूस करते हैं। यहाँ तक कि अंजन तक को हाथ नहीं लगाती। बिना अंजन के ही इस सुन्दरी के नेत्र दूसरे के मानमर्दन और खंजनों को तिरस्कार में सक्षम हैं। काजल के बिना ही ये आँखें अपनी सुन्दरता और चंचलता के जरिए खंजन पक्षी के गुरूर को खंडित करते हैं। यहाँ पर बिहारी का नायिका - सौन्दर्य चित्रण रीतिकालीन अलंकारिकता का निषेध करता है।

प्रस्तुतकर्ता
बेनाम कुमार (अतिथि शिक्षक)
हिन्दी विभाग
राजनारायण महाविद्यालय हाजीपुर
(BRABU·MUZAFFARPUR)
मो० - 8292271041
ईमेल - benamkumar113@gmail.com

दिनांक
30/07/2020